आध्यात्मिक प्रेम की सुगंध

जब हृदय अपने अस्तित्व का कारण जान लेता है

पूज्य दाजी

के 71वें जन्मदिवस के अवसर पर

28 सितंबर 2026 को कान्हा शांतिवनम् में दिया गया संदेश

आध्यात्मिक प्रेम की सुगंध

जब हृदय अपने अस्तित्व का कारण जान लेता है

प्रिय मित्रों,

हर आध्यात्मिक परम्परा हमें बताती है कि प्रेम ही इस आध्यात्मिक यात्रा के केन्द्र में है। हम सहमति में सिर हिला देते हैं और मान लेते हैं कि हम इस बात को समझते हैं, लेकिन क्या हम वास्तव में समझते हैं? इस संदेश में हम उस क्रम को समझेंगे जो प्रेम के विकसित होने और उसकी सुगंध बिखेरने के साथ धीरे-धीरे उजागर होता है। लेकिन पहले यह समझें कि सुगंध की प्रकृति क्या है? क्या कोई फूल सुगंधित होने का चुनाव करता है? नहीं। जब फूल अपने वास्तविक स्वरूप में पूर्ण रूप से खिलता है तब उसकी सुगंध स्वाभाविक रूप से फैलती है। सुगंध एक सहज प्रवाह है। आध्यात्मिक अर्थ में प्रेम भी ऐसा ही सहज प्रवाह है।

पिछले नौ संदेशों की श्रृंखला में हमने 'विभाजित हृदय' शीर्षक वाले संदेश से आरम्भ किया था। फिर हमने उन बाधाओं का वर्णन किया जो हमारी पूर्णता एवं विकास में रुकावट बनती हैं और यह भी जाना कि उनसे ऊपर कैसे उठा जा सकता है। वे बाधाएँ थीं – जड़ता जिसने हमारे उद्देश्य को निष्क्रिय कर दिया, संशय जिसने हमारे आधार को कमजोर कर दिया, अहंकार जिसने हमारे ऊपर एक छत रूपी सीमा खड़ी कर दी, ईर्ष्या जिसने हमारी दृष्टि को मार्ग से

भटका दिया, पूर्वाग्रह जिसने हमारी समझ को विकृत कर दिया और भय जिसने भीतर से ही द्वार को बंद कर दिया। 'नदी अपने प्रवाह को पहचान लेती है' शीर्षक वाले संदेश में जब वह द्वार खुल गया तब भय भरोसे में परिवर्तित हो गया। 'बीज बोने से पहले की मिट्टी' वाले संदेश में श्रद्धा ने अपनी आंतरिक भूमि को तैयार किया। यह दसवाँ संदेश उसी श्रृंखला की अगली स्वाभाविक कड़ी है। इसमें हम समझेंगे कि श्रद्धा से ग्रहणशील बना हृदय किस प्रकार कृपा को अपने भीतर प्रवेश करने देता है। कृपा जिसे भर देती है वह प्रेम बन जाता है। और जब प्रेम अपने स्रोत को पहचान लेता है तब वह भक्ति बन जाता है।

'प्रेम' सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले और सबसे अधिक गलत समझे जाने वाले शब्दों में से एक है। यह उस भावना का वर्णन करता है – जो एक माँ अपने नवजात शिशु को उठाते समय महसूस करती है, जो एक युवा प्रथम आकर्षण के उत्साह में महसूस करता है, जो एक देशभक्त अपने राष्ट्र के लिए महसूस करता है, जो एक भक्त दिव्य के लिए महसूस करता है और यहाँ तक कि उस आनंद का भी जो हमें एक प्याला अच्छी कॉफी से मिलता है। हमने 'प्रेम' शब्द का अर्थ इतना व्यापक कर दिया है कि इसमें लगभग हर भावना समा गई है।

तो, आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रेम का क्या अर्थ है? आध्यात्मिक प्रेम की एक सरल कसौटी यह है कि हम उन लोगों को कैसे देखते हैं जो हमारी श्रद्धा, हमारे मार्ग या ईश्वर के बारे में हमारी धारणा से सहमत नहीं हैं। जब हम लोगों को केवल इसलिए अलग कर देते हैं क्योंकि उनकी उपासना की पद्धति अलग है तब समझना चाहिए कि हमारे भीतर अभी प्रेम पूरी तरह विकसित नहीं हुआ है। जब हम वास्तव में ईश्वर से प्रेम करते हैं तब हम ईश्वर की किसी भी रचना को तुच्छ मानकर अस्वीकार नहीं कर सकते। दूसरों को सहन करना एक आरम्भ है। दूसरों को स्वीकार करना उससे भी गहनतर है। और हर व्यक्ति के भीतर उसी पवित्र सार को पहचान लेना ही प्रेम का प्रवाह है।

आध्यात्मिक प्रेम तब प्रकट होता है जब हृदय में एक गहन रूपांतरण होता है। यह रूपांतरण एक सुंदर क्रम के माध्यम से धीरे-धीरे विकसित होता है।

तड़प से श्रद्धा, श्रद्धा से ग्रहणशीलता, ग्रहणशीलता से कृपा, कृपा से प्रेम, प्रेम से भक्ति।

प्रत्येक चरण अगले चरण को तैयार करता है। प्रत्येक चरण अपने पहले वाले चरण में छिपा रहता है, ठीक वैसे ही जैसे बीज के भीतर फूल और फूल के भीतर उसकी सुगंध छिपी होती है।

तड़प, पहली गति

ध्यान और ईश्वर की सचेत खोज आरम्भ होने से पहले प्रायः हमारे मन में एक बेचैनी उत्पन्न होती है। कुछ अधूरा-सा लगता है। हमारे पास सुख-सुविधाएँ हो सकती हैं, उपलब्धियाँ, परिवार, सम्मान, ज्ञान और वह सब कुछ हो सकता है जो संतोष देता है, फिर भी भीतर एक टीस बनी रहती है जिसका कोई उत्तर नहीं मिल पाता है।

हममें से कुछ लोग अधिक व्यस्त होकर, अधिक वस्तुएँ बटोरकर, यात्राएँ और अपना मनोरंजन करके इस अधूरेपन को भरने की कोशिश करते हैं। हम सम्बन्धों, उपलब्धियों और अनुभवों को खोजते हैं, यहाँ तक कि आध्यात्मिक अनुभवों को भी। फिर भी वह टीस लौट आती है। अब विचार करें, यदि यह टीस कोई समस्या ही न हो तो? यदि यह वास्तव में हमारे लिए एक निमंत्रण हो तो?

आध्यात्मिक प्रेम तब प्रकट होता है जब हृदय में एक गहन रूपांतरण होता है। यह रूपांतरण एक सुंदर क्रम के माध्यम से धीरे-धीरे विकसित होता है। तड़प से श्रद्धा, श्रद्धा से ग्रहणशीलता, ग्रहणशीलता से कृपा, कृपा से प्रेम, प्रेम से भक्ति।

मिट्टी में बोया गया बीज उस सूर्य की ओर बढ़ता है जिसे उसने कभी देखा तक नहीं। उसके भीतर की कोई अदृश्य समझ ऊपर की ओर बढ़ना जानती है जो उसे विकास और पूर्णता की ओर खींच ले जाती है। हमारे भीतर की यही गति तड़प है। हमें गंतव्य का पता नहीं होता लेकिन कुछ हमें खींच रहा होता है। हमें महसूस होता है कि जीवन में ऐसी गहराई है जिसे हमने अभी तक स्पर्श नहीं किया है। एक ऐसा सत्य है जिसे हमने अभी तक अपने जीवन में उतारा नहीं है, एक ऐसा घर है जहाँ हम अभी तक पहुँचे नहीं हैं। हमारी आध्यात्मिक यात्रा इसी तड़प से आरम्भ होती है। जब यह तड़प एक दिशा को पहचान लेती है तब वह श्रद्धा बन जाती है।

श्रद्धा, जहाँ हृदय स्थित होता है

'बीज बोने से पहले की मिट्टी' वाले संदेश में हमने श्रद्धा की बात की थी। इसका अनुवाद आमतौर पर 'विश्वास' या 'फेथ' (faith) के रूप में किया जाता है, हालाँकि 'फेथ' शब्द इसके गहन और समृद्ध अर्थ को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाता। श्रद्धा केवल असम्भव प्रतीत होने वाली बातों पर विश्वास करने से कहीं अधिक है। यह बिना सोचे-समझे स्वीकार करने, आँख मूँदकर आज्ञा मानने या बुद्धि का उपयोग न करने से भी कहीं अधिक है। यह सम्पूर्ण अस्तित्व की एक आंतरिक गति है। इसमें *हृदय को सत्य के प्रति समर्पित करने या उसमें स्थापित करने* का भाव निहित है।

'मैं किस बात पर विश्वास करता हूँ?' से अधिक अर्थपूर्ण है 'मैं अपने हृदय को कहाँ स्थित रखता हूँ?' हो सकता है कि हम ईश्वर में विश्वास करते हों जबकि हमारा हृदय पद और प्रतिष्ठा में लगा हो। हम आध्यात्मिकता के विषय में बहुत कुछ बोलते हों जबकि हमारा हृदय मान-सम्मान और प्रशंसा पाने में लगा हो। हम सादगी की प्रशंसा करते हों जबकि हमारा हृदय भौतिक वस्तुओं के संग्रह में आसक्त रहता हो। हम प्रेम की बातें करते हों जबकि हमारा ध्यान मन में संचित रोष और द्वेष पर हो।

भगवद्‌गीता इसे इस प्रकार व्यक्त करती है [1] –

> **श्रद्धामयोऽयं पुरुषो**
> **यो यच्छ्रद्धः स एव सः**
>
> सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण (स्वभाव या संस्कारों) के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय है, इसलिए जो मनुष्य जैसी श्रद्धा रखता है, वह स्वयं भी वैसा ही होता है।

दूसरे शब्दों में, *श्रद्धा हमें गढ़ती है।* जिस विषय को हृदय बार-बार ग्रहण करता है, वह धीरे-धीरे हमें ढालने लगता है। हम वही बन जाते हैं जिसे हम अपने ध्यान, विश्वास, आकांक्षा और प्रेम से प्रतिष्ठित करते हैं।

श्रद्धा आरम्भ में रुचि, आदरभाव, आकांक्षा या केवल हर सुबह ध्यान में बैठकर अपने भीतर मुड़ने की एक सहज तत्परता के रूप में प्रकट हो सकती है। जब इसे पोषित किया जाता है तब यह और गहरी होती जाती है। जो केवल एक अंतर्मुखिता के रूप में आरम्भ होता है, वह धीरे-धीरे आकर्षण बन जाता है। आकर्षण आत्मीयता में बदल जाता है। आत्मीयता प्रेम के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।

श्रद्धा वह भाव है, जिसमें हृदय यह सीखता है कि उसे कहाँ स्थित होना है। जब हृदय को अपना निवास मिल जाता है तब उसमें से जो सहज प्रवाह उत्पन्न

श्रद्धा आरम्भ में रुचि, आदरभाव, आकांक्षा या केवल हर सुबह ध्यान में बैठकर अपने भीतर मुड़ने की एक सहज तत्परता के रूप में प्रकट हो सकती है। जब इसे पोषित किया जाता है तब यह और गहरी होती जाती है। जो केवल एक अंतर्मुखिता के रूप में आरम्भ होता है, वह धीरे-धीरे आकर्षण बन जाता है। आकर्षण आत्मीयता में बदल जाता है। आत्मीयता प्रेम के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।

---

[1] भगवद्‌गीता, अध्याय 17, श्लोक 3।

होता है, वही प्रेम है। हम यह भी कह सकते हैं कि श्रद्धा वही प्रेम है जो स्वयं को अभी तक प्रेम के रूप में पहचान नहीं पाया है। तड़प पूछती है, 'मैं जिसकी खोज कर रही हूँ वह कहाँ है?' श्रद्धा हृदय को उसी दिशा में स्थापित करके इसका उत्तर देती है। और जब हृदय को बार-बार वहाँ स्थापित किया जाता है तब वह खुलने लगता है। इस प्रकार, श्रद्धा ग्रहणशीलता बन जाती है।

ग्रहणशीलता – खुलने का साहस

बंद मुट्ठी की तरह एक बंद हृदय कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता। हम कृपा के लिए याचना कर सकते हैं, रूपांतरण के लिए प्रार्थना कर सकते हैं, सर्वोच्च की खोज कर सकते हैं और हर सुबह ध्यान में बैठ सकते हैं, फिर भी आंतरिक रूप से अपनी पसंद-नापसंद से जुड़े रह सकते हैं। एक बार अपने आप को पूछ कर देखें, 'क्या मैं अपने जीवन में बिना किसी असुविधा के रूपांतरण चाहता हूँ? क्या मैं नियंत्रण अपने हाथ में रखते हुए समर्पण करना चाहता हूँ? क्या मैं अपने जीवन में कुछ भी बदले बिना अनंत को पाना चाहता हूँ? दूसरे शब्दों में, क्या मैं ईश्वर को अपनी शर्तों पर चाहता हूँ?'

श्रद्धा धीरे-धीरे इस स्थिति को बदल देती है। जैसे-जैसे भरोसा गहरा होता जाता है, वैसे-वैसे अपना बचाव करने की आवश्यकता कम हो जाती है। आगे क्या होगा, उस पर नियंत्रण रखने की हमारी प्रवृत्ति भी धीरे-धीरे कम होने लगती है। यही ग्रहणशीलता है, *आंतरिक उपलब्धता है,* उसे ग्रहण करने की इच्छा रखना है जिसे हृदय अपने लिए उत्पन्न नहीं कर सकता। हम दिव्य प्रवाह के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। हम अपने अंतःक्षेत्र को इस प्रकार तैयार करते हैं कि कृपा के उपहार को ग्रहण कर सकें। यही आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य है।

अंतःप्रवेशी के लिए तैयारी

बाबूजी ने उस दैवीय उपहार को समझाने के लिए एक बहुत सुंदर रूपक उपयोग किया है। उन्होंने प्रेम रूपी उस 'अंतःप्रवेशी' के लिए अपने अंतस् को

तैयार करने के बारे में कहा है। सामान्य तौर पर, किसी अंतःप्रवेशी का स्वागत नहीं किया जाता, लेकिन यहाँ इसका अर्थ पूरी तरह से भिन्न है। जब परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं तब प्रेम हमारे भीतर प्रवेश करता है और संपूर्ण हृदय पर अपना अधिकार कर लेता है। जब हमारा अंतःक्षेत्र ग्रहणशील हो जाता है तब कृपा ही इसे प्रेरित करती है। इस ग्रहणशीलता की तैयारी के लिए, गहरी जड़ों को उखाड़ फेंका जाता है ताकि नया जीवन स्वयं को स्थापित कर सके। वे जड़ें हैं – हमारी अपेक्षाएँ, पूर्वाग्रह, भय, पसंद-नापसंद, संचित संस्कार, अपने अहंकार का दुराग्रह और यह माँग कि आध्यात्मिक जीवन हमारी इच्छाओं के अनुसार ही आगे बढ़े।

कृपा हमेशा विद्यमान है और हमारी प्रतीक्षा कर रही है। हमें स्वयं को उसके लिए उपलब्ध कराना है। श्रद्धा हमारा अंतःक्षेत्र तैयार करती है, जहाँ कृपा को अब किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं मिलता। तब हम स्वयं को प्रेम को सौंप देते हैं। आरम्भ में हम कहते हैं, 'मैं विश्वास करता हूँ।' बाद में हम कहते हैं, 'मुझे भरोसा है।' फिर बाद में एक समय ऐसा आता है जब भरोसा करने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि भरोसा करने वाले और जिस पर भरोसा किया जा रहा है, उनके बीच की दूरी ही समाप्त हो जाती है। प्रेम एक अधिकारी के रूप में प्रवेश करता है केवल इसलिए कि अंततः वह स्वयं को हृदय के असली स्वामी के रूप में प्रकट कर सके।

प्रेम और लेन-देन

हम जिस सामान्य प्रेम को जानते हैं, उसमें प्रायः लेन-देन का तत्त्व शामिल होता है। हम कुछ देते तो हैं लेकिन बदले में कुछ पाने की अपेक्षा रखते हैं,

कृपा हमेशा विद्यमान है और हमारी प्रतीक्षा कर रही है। हमें स्वयं को उसके लिए उपलब्ध कराना है। श्रद्धा हमारा अंतःक्षेत्र तैयार करती है, जहाँ कृपा को अब किसी प्रकार का प्रतिरोध नहीं मिलता। तब हम स्वयं को प्रेम को सौंप देते हैं।

फिर भले ही वह अपेक्षा हमारे भीतर अचेतन रूप से ही क्यों न हो। स्नेह, स्नेह की अपेक्षा करता है। ध्यान, ध्यान की अपेक्षा करता है। त्याग, सराहना की अपेक्षा करता है। देखभाल, कृतज्ञता की अपेक्षा करती है।

जब सम्बन्धों में यह लेन-देन हमारी अपेक्षा के अनुसार चलता है तब हमें लगता है कि हमसे प्रेम किया जा रहा है। जब ऐसा नहीं होता तब हम निराश हो जाते हैं। यह ऐसा प्रेम है जिसमें अपेक्षा का भाव मिला हुआ है। जहाँ भी अपेक्षा होती है वहाँ भय आस-पास ही होता है। वह भय इस बात का हो सकता है कि जो हमारे पास है, हम उसे खो देंगे या इस बात का भय कि जो हम चाहते हैं, वह हमें नहीं मिलेगा या फिर इस बात का भय कि हमें भुला दिया जाएगा, किसी और को हमारी जगह दे दी जाएगी, हमें ठुकरा दिया जाएगा या अकेला छोड़ दिया जाएगा।

भय हमें संकुचित करता है, जबकि प्रेम हमारा विस्तार करता है। भय पूछता है, 'मेरा क्या होगा?' जबकि प्रेम को यह प्रश्न पूछने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। भय सीमाएँ बनाता है, प्रेम सीमाओं को मिटा देता है। और श्रद्धा इन दोनों के बीच सेतु का कार्य करती है। भय कहता है, 'अपनी रक्षा करो,' जबकि श्रद्धा फुसफुसाती है, 'स्वयं पर भरोसा रखो।' आत्म-रक्षा से आत्म-न्यास की ओर यह गति आध्यात्मिक जीवन के सबसे महान परिवर्तनों में से एक है। यह हृदय के लिए मार्ग प्रशस्त करता है ताकि वह कृपा के प्रति ग्रहणशील बने।

भय सीमाएँ बनाता है, प्रेम सीमाओं को मिटा देता है। और श्रद्धा इन दोनों के बीच सेतु का कार्य करती है। भय कहता है, 'अपनी रक्षा करो,' जबकि श्रद्धा फुसफुसाती है, 'स्वयं पर भरोसा रखो।' आत्म-रक्षा से आत्म-न्यास की ओर यह गति आध्यात्मिक जीवन के सबसे महान परिवर्तनों में से एक है। यह हृदय के लिए मार्ग प्रशस्त करता है ताकि वह कृपा के प्रति ग्रहणशील बने।

सच्चा प्रेम एक सूक्ष्म अवस्था है। यह उस गहन आंतरिक साधना का परिणाम है, जो धीरे-धीरे, मौन में और बिना किसी प्रदर्शन के सम्पन्न होती है। इसके विपरीत, जब प्रेम का प्रदर्शन होने लगता है तो वह विशुद्ध नहीं रह जाता। जिस क्षण वह किसी प्रत्युत्तर की अपेक्षा करने लगता है, उसमें अहंकार की गंध आ जाती है। गुलाब किसी राहगीर की ओर देखकर यह नहीं पूछता, 'क्या तुमने मेरी सुगंध महसूस की?' वह सुगंध देता है क्योंकि देना ही उसका स्वभाव है।

वह बाड़ जो विलीन हो जाती है

हमारी अंतर्भूमि में सबसे गहरी जड़ें अहंकार की होती हैं – उस अलग 'मैं', की जो अस्तित्व के विशाल, असीमित क्षेत्र में से अपने लिए एक छोटा-सा क्षेत्र घेर लेता है और फिर जीवन भर उसकी परिधि की रक्षा करने में लगा रहता है। इस बाड़ के भीतर सब कुछ 'मेरा' है और जो कुछ बाहर है वह वांछनीय, भयावह, उपयोगी या अप्रासंगिक बन जाता है। जब हमारी चेतना उस घिरे हुए क्षेत्र में सिमटकर रह जाती है तब अहंकार हावी हो जाता है। प्रेम तब प्रस्फुटित होता है जब यह बाड़ ही नहीं रहती। और ऐसा होने के लिए प्रेम इस बाड़ को नष्ट नहीं करता, वह केवल इसे अनावश्यक बना देता है।

जब चेतना उस बाड़ से आगे विस्तारित होती है, तब वह 'मैं' से 'हम' की ओर बढ़ती है। इस प्रक्रिया में उसे यह बोध होता है कि जिसे वह खोज रही थी, उसी से वह स्वयं को बचाने में लगी हुई थी। अहंकार की यह बाड़ वास्तव में भय की बनाई हुई बाड़ है। और भीतर से उस बाड़ को क्या विलीन करता है? आत्मीयता। प्रेम हृदय को तब तक ऊष्मा देता है जब तक कि अहंकार पिघल नहीं जाता, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य के चमकते ही खिड़की पर जमी बर्फ गायब हो जाती है।

खिड़की और प्रकाश

हार्टफुलनेस के चारों अभ्यास हमें ग्रहणशीलता विकसित करने में सहायता करते हैं।

ध्यान प्रकाश के लिए खिड़की को खोलता है।

जब हम ध्यान में बैठते हैं तब हम अपना ध्यान धीरे से हृदय के भीतर विद्यमान दिव्य प्रकाश की उपस्थिति की ओर मोड़ते हैं। हम किसी अनुभव को बलपूर्वक प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते और न ही कोई कल्पना गढ़ते हैं। हम आंतरिक रूप से स्वयं को उस दिव्य उपस्थिति के लिए उपलब्ध कराते हैं।

सफ़ाई खिड़की के शीशे पर जमी गंदगी को हटाती है।

समय के साथ संस्कार, प्रवृत्तियाँ, भावनात्मक बोझ और मन की जटिलताएँ हमारी समझ को धुंधला कर देती हैं। सफ़ाई उन्हें हटा देती है, ताकि प्रकाश अधिक सहजता से भीतर प्रवेश कर सके।

प्रार्थना विनम्रतापूर्वक उस खिड़की को पूरी तरह कृपा को प्राप्त करने के लिए खोल देती है।

प्रार्थना में हम स्वीकार करते हैं कि यह प्रकाश हमारा नहीं है। इससे हमारे भीतर का भ्रम कम होता है कि हम अपने बल पर ही सब कुछ कर सकते हैं। यह हमें उस परम स्रोत के समक्ष अत्यंत विनम्रता, मन के खुलेपन और अपने से कहीं महानतर प्रज्ञा द्वारा मार्गदर्शित होने की सहज इच्छा के साथ ला खड़ा करती है।

सतत स्मरण पूरे दिन खिड़की को प्रकाश के स्रोत की ओर उन्मुख रखता है।

जब हम काम करते हैं, बोलते हैं, सेवा करते हैं, कुछ बनाते हैं और दूसरों की देखभाल करते हैं तब भी हृदय अपनी आंतरिक दिशा को बनाए रखता है। यह स्मरण उस झुकाव और दिशा-बोध को सुरक्षित रखता है जिसे श्रद्धा ने स्थापित किया था।

ध्यान प्रकाश को आमंत्रित करता है।
सफ़ाई अवरोधों को दूर करती है।
प्रार्थना हमें विनम्रतापूर्वक प्रकाश के स्रोत के प्रति ग्रहणशील बनाती है।
सतत स्मरण हृदय को उस स्रोत की ओर उन्मुख रखता है।

ध्यान और सफ़ाई हृदय की दशा पर काम करते हैं। प्रार्थना स्रोत के साथ हमारा जुड़ाव स्थापित करती है। सतत स्मरण हृदय की दिशा को बनाए रखता है। और कृपा वह प्रदान करती है जिसे इनमें से कोई भी अभ्यास अपने प्रयास से उत्पन्न नहीं कर सकता।

कृपा को प्रयास द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता

हम कृपा को उत्पन्न नहीं करते, ठीक वैसे ही जैसे कोई किसान वर्षा को उत्पन्न नहीं करता। हम स्वयं को उसे ग्रहण करने के लिए तैयार करते हैं, जैसे किसान मिट्टी को तैयार करता है। वह पत्थरों को हटाता है, मिट्टी को नरम करता है, उसमें बीज बोता है और सजगता के साथ प्रतीक्षा करता है। जब वर्षा आती है तब खेत उसे ग्रहण करने के लिए तैयार होता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक साधना हमारी तैयारी है। हम अपने भीतर की अशुद्धियों, रुकावटों व पुराने संस्कारों को हटाते हैं और अपने हृदय को कृपा प्राप्त करने के लिए तैयार करते हैं।

यह भेद हमें दो भूलों से बचाता है। पहली भूल है अहंकार, यह मान लेना कि हमारी आध्यात्मिक दशा हमारी व्यक्तिगत उपलब्धि है। दूसरी भूल है

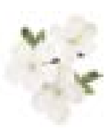

ध्यान और सफ़ाई हृदय की दशा पर काम करते हैं। प्रार्थना स्रोत के साथ हमारा जुड़ाव स्थापित करती है। सतत स्मरण हृदय की दिशा को बनाए रखता है। और कृपा वह प्रदान करती है जिसे इनमें से कोई भी अभ्यास अपने प्रयास से उत्पन्न नहीं कर सकता।

निष्क्रियता, यह मान लेना कि चूँकि कृपा तो स्वतः प्राप्त होती है, इसलिए किसी तैयारी की आवश्यकता ही नहीं है। ये दोनों ही दृष्टिकोण अधूरे हैं। हम पूरी निष्ठा के साथ तैयारी करते हैं और अंततः कृपा उस कार्य को पूर्ण कर देती है जिसे केवल प्रयास कभी नहीं कर सकता।

प्राणाहुति और छलकता पात्र

खाली प्याले से पानी नहीं उँड़ेला जा सकता। इसी प्रकार मानवीय सम्बन्धों में हम वह नहीं दे सकते जो हमारे पास नहीं है। फिर भी, जीवन का एक बड़ा हिस्सा शून्यता और खालीपन से प्रेम करने में बीत जाता है। हम वही देने का प्रयास करते रहते हैं जिसे पाने की हम आतुरता से तलाश कर रहे हैं। इसी कारण मानवीय प्रेम प्रायः थका देने वाला बन जाता है। देना भी एक प्रयास बन जाता है, क्योंकि देने के पीछे कहीं न कहीं पाने की आशा छिपी रहती है। इसी तरह प्रेमी भिक्षुक बन जाते हैं, एक-दूसरे से प्रेम की भीख माँगते हैं!

आध्यात्मिक प्रेम, प्राप्त करने से आरम्भ होता है। हार्टफुलनेस परम्परा में, हम ध्यान में बैठते हैं और प्राणाहुति के प्रति पूर्णतः ग्रहणशील हो जाते हैं। ध्यान-दर-ध्यान अति सूक्ष्म रूप से हमारे भीतर कुछ बदलने लगता है। हमारा आंतरिक पात्र भरने लगता है। जैसे-जैसे यह भरता जाता है, प्रेम स्वाभाविक रूप से और बिना किसी प्रयास के भीतर से उमड़ने लगता है। *पूर्णता स्वयं को व्यक्त करने लगती है।* यही प्रेम की रूपांतरकारी शक्ति है। यह सब कुछ सुंदर बना देती है और सबसे भावशून्य हृदय में भी जीवन भर देती है। इसकी स्पंदनात्मक शक्ति हम स्वयं पैदा नहीं करते बल्कि हमें जो प्रेम प्राप्त होता है, हम उसके वाहक बन जाते हैं।

आइए इस प्रगति-क्रम को फिर से देखें –

> तड़प खोज को जगाती है।
> श्रद्धा उस खोज को दिशा देती है।
> श्रद्धा गहन होकर ग्रहणशीलता में परिवर्तित हो जाती है।

श्रद्धा वह भाव है, जिसमें हृदय स्वयं को प्रियतम की दिशा में स्थापित कर देता है। प्रेम वह भाव है, जिसमें हृदय प्रियतम से ओतप्रोत हो जाता है। भक्ति वह भाव है, जिसमें हृदय केवल प्रियतम में ही स्थित रहना चाहता है।

ग्रहणशीलता कृपा का स्वागत करती है।
कृपा हृदय को भर देती है।
भरा हुआ हृदय प्रेम के रूप में छलकता है।
वही प्रेम अपने स्रोत को पहचान लेता है और भक्ति बन जाता है।

भक्ति, जब प्रेम अपने स्रोत को पहचान लेता है

जब प्रेम जाग्रत हो जाता है तब वह हमारे सम्बन्धों, हमारे कार्यों, हमारी वाणी, हमारी सेवा और संसार को देखने की हमारी दृष्टि में सहज रूप से प्रवाहित होने लगता है। वह हमारे निर्णय और आलोचना के भाव को नरम बनाता है और अलगाव की दीवारों को कमजोर करता है। फिर एक और भी गहनतर आंतरिक गति आरम्भ होती है। प्रेम को स्मरण हो जाता है कि वह कहाँ से आया था। वह अपने स्रोत की ओर उसी स्वाभाविकता से मुड़ता है, जिस प्रकार नदी सहज रूप से समुद्र की ओर बहती है। यह मोड़ ही भक्ति है। भक्ति वह अवस्था है, जिसमें प्रेम अपने उद्गम को पहचान लेता है और पूर्णतः उसी की ओर उन्मुख हो जाता है।

श्रद्धा वह भाव है, जिसमें हृदय स्वयं को प्रियतम की दिशा में स्थापित कर देता है। प्रेम वह भाव है, जिसमें हृदय प्रियतम से ओतप्रोत हो जाता है। भक्ति वह भाव है, जिसमें हृदय केवल प्रियतम में ही स्थित रहना चाहता है।

तड़प, श्रद्धा, ग्रहणशीलता, कृपा, प्रेम और भक्ति अलग-अलग भाव नहीं हैं। वे जीवन के विकसित होने की यात्रा के चरण हैं, ठीक वैसे ही जैसे एक पौधा बीज, जड़, तना, फूल व सुगंध के रूप में विकसित होता है और अंततः वही सुगंध अपने स्रोत की ओर लौटती है।

लौटाने का नियम

प्रकृति हमें प्रेम का एक और गुण सिखाती है। एक आम के वृक्ष को मिट्टी, सूर्य का प्रकाश, जल और थोड़े-से गोबर की आवश्यकता होती है। इन साधारण अर्पणों से वह हमें रस भरी मिठास, सुगंध, पोषण, छाया और नए जीवन की अनगिनत सम्भावनाएँ प्रदान करता है। नारियल का वृक्ष मिट्टी, वर्षा, सूर्य के प्रकाश व वायु से अपना पोषण ग्रहण करता है और उन्हें ऐसे रूप में परिवर्तित कर देता है, जो उनके मूल रूप से कहीं अधिक समृद्ध होता है। गाय को घास, चारा, जल, सूर्य का प्रकाश, देखभाल और स्नेह चाहिए। इसके बदले वह हमें पौष्टिक दूध देती है।

प्रकृति साधारण को ग्रहण करती है और उत्तम लौटाती है।

और हम क्या करते हैं? हमें जीवन की उत्तम वस्तुएँ प्राप्त होती हैं – सूर्य का प्रकाश, वायु, जल, यह अद्भुत शरीर, दूसरों का स्नेह, अपने पूर्वजों का ज्ञान, माता-पिता व शिक्षकों का त्याग, पृथ्वी की समृद्धि और इन सबसे बढ़कर, कृपा प्राप्त करने की सम्भावना।

इसके बदले हम क्या दे सकते हैं? हम सूर्य को उसका प्रकाश वापस नहीं दे सकते और न ही बादलों को उनका पानी लौटा सकते हैं। हमें कृपा का उसके स्रोत को कोई प्रतिदान देने की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा के पास ऐसी कोई कमी नहीं है, जिसे हमें पूरा करना हो। हमारे ध्यान के योग्य केवल एक ही उपहार है और वह है, *जो कुछ हमें प्राप्त हुआ है, उसे रूपांतरित करना।*

यदि आम का वृक्ष खाद को मिठास में रूपांतरित कर देता है, नारियल का वृक्ष साधारण जल को पोषक नारियल-पानी में और गाय घास को दूध में रूपांतरित कर देती है तो हमारे भीतर भी यह पवित्र रूपांतरण-क्षमता होनी चाहिए।

जब हम आहत हों तब क्या हम उसके बदले क्षमा दे सकते हैं?
जब हमें क्रोध मिले तब क्या हम उसके बदले समझ दे सकते हैं?
जब हमें घृणा मिले तब क्या हम उसके बदले दया दे सकते हैं?
जब हमें ज्ञान मिले तब क्या हम उसे विवेक में बदल सकते हैं?
जब हमें समृद्धि मिले तब क्या हम उदार बन सकते हैं?
जब हमें कृपा मिले तब *क्या हम प्रेम दे सकते हैं?*

एक मनुष्य होने की यही गरिमा है। हमारी महानता इस बात में है कि *हमारे भीतर से होकर जीवन क्या रूप धारण करता है।* एक वृक्ष अपने भीतर के कार्य की गुणवत्ता को अपने फलों के माध्यम से प्रकट करता है। हम भी ऐसा ही करते हैं। परमात्मा प्रतीक्षा करते हैं कि हम स्वयं को उनके हाथों में सौंपकर क्या बनने देते हैं।

जब प्रेम हमारा स्वभाव बन जाएगा, तब हमें इस बात की चिंता नहीं रहेगी कि उसे कौन पहचानता है, कौन उसका प्रत्युत्तर देता है और कौन उसकी सराहना करता है। सच्चे प्रेम को किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं होती। उसकी सुगंध ही उसका प्रमाण है।

सहृदय आपका,
कमलेश

पूज्य दाजी
के 71वें जन्मदिवस के अवसर पर
28 सितंबर 2026 को कान्हा शांतिवनम् में दिया गया संदेश

अधिक गहराई में जाने के लिए
वहाँ बहुत कुछ है जो आपकी प्रतीक्षा कर रहा है

हार्टफुलनेस ऐप

शुरुआत के लिए एक शांत स्थान

अपना अभ्यास अपने साथ रखें — नि:शुल्क ऐप डाउनलोड करें और किसी व्यक्तिगत प्रशिक्षक से कभी भी जुड़ें।

नि:शुल्क डाउनलोड। दैनिक अभ्यास। प्रशिक्षक सदैव उपलब्ध।

Heartfulnessapp.org

मास्टरक्लास

घर बैठें और गहराई में जाएँ

तीन नि:शुल्क वीडियो सत्रों के माध्यम से दाजी के साथ रिलैक्सेशन, ध्यान, सफ़ाई और प्रार्थना सीखें।

नि:शुल्क वीडियो। दाजी से सीखें। 3 सत्र।

Heartfulness.org/global/masterclass

रिट्रीट

केवल अपने लिए समय

कोलाहल से दूर होकर एक शांतिपूर्ण सप्ताहांत बिताएँ, जो धीरे-धीरे आपके अभ्यास को गहन बनाता है।

शांत वातावरण। गहन अभ्यास। सप्ताहांत प्रवास।

Heartfulness.org/global/retreat

हार्टस्पॉट्स

अपने निकट एक केंद्र खोजें

आपका निकटतम ध्यान केंद्र आपकी कल्पना से भी अधिक समीप है और वह भी नि:शुल्क।

6000+ केंद्र। हार्टफुल समुदाय। आप कभी भी वहाँ जा सकते हैं।

Heartspots.heartfulness.org

नि:शुल्क ऐप डाउनलोड करने के लिए स्कैन करें। जब भी आवश्यकता हो, यह आपके साथ है। एक मार्गदर्शित सत्र से प्रारम्भ करें और अभ्यास को अपने भीतर स्वाभाविक रूप से विकसित होने दें। अंतर की यात्रा एक शांत क्षण से आरम्भ होती है।

heartfulness
purity weaves destiny